संपादकीय

# महंगाई का दुश्चक्र

*जब आमदनी में तेज गिरावट जारी हो और क्रयशक्ति कमजोर हो, तब एक साधारण व्यक्ति यही सोचता है कि कम से कम उसकी अनिवार्य जरूरत की चीजों की कीमतों तक उसकी पहुंच हो। लेकिन पिछले कई महीने से हालत यह है कि अर्थव्यवस्था एक संवेदनशील स्थिति से गुजर रही है, इसमें बहुत सारे लोगों के सामने रोजी-रोटी का सवाल एक बड़ी चुनौती हो गया है और इसके बरक्स बाजार में जरूरत की सभी वस्तुओं की कीमतें आसमान छू रही हैं।*

*सोमवार को जारी आंकड़ों के मुताबिक मार्च महीने में देश में खुदरा महंगाई दर बढ़ कर 5.52 हो गई। जब फरवरी में खुदरा महंगाई 5.03 फीसद की रफ्तार से बढ़ी थी, तभी लोगों के सामने अनिवार्य वस्तुओं की खरीदारी भी चिंता का मामला बन गई थी। इसके अलावा, फरवरी में समूचे देश में खाने-पीने की चीजों के दाम 3.87 फीसद बढ़े थे, वहीं मार्च में इसमें 4.94 फीसद बढ़ोतरी हो गई। अब खुदरा महंगाई दर में करीब आधा फीसद और खाने-पीने के दाम में लगभग एक फीसद की बढ़ोतरी के आंकड़े के बीच आम लोग किन हालात का सामना कर रहे होंगे, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। गौरतलब है कि रोजमर्रा की खाद्य सामग्रियों में दालों के दाम में सवा तेरह फीसद, तेल की कीमत में करीब पच्चीस फीसद और फल, अंडा सहित दूसरी चीजों के मूल्यों में भी खासी बढ़ोतरी हुई। यह स्थिति तब है जब ग्रामीण इलाकों में महंगाई दर शहरों की अपेक्षा थोड़ी कम रही। वरना औसत आंकड़ा शायद और ज्यादा होता। सवाल है कि जिस दौर में समूचा देश एक तरह से आर्थिक मंदी की चपेट में है, आबादी के एक छोटे हिस्से को छोड़ दें तो अमूमन सभी लोगों के सामने आमदनी और खर्चे के मोर्चे पर लगातार चुनौतियां बनी हुई हैं, ऐसे में सरकार की प्राथमिकता में महंगाई को काबू में रखना क्यों नहीं है! साल भर पहले जब महामारी की रोकथाम के मकसद से पूर्णबंदी लागू की गई थी, तब बहुत कम या फिर दिहाड़ी की आय पर निर्भर लोगों के सामने जिंदा रहने तक के लिए भोजन जुटाना मुश्किल हो गया था। हालांकि तब एक तबका ऐसा था, जो पहले से कुछ जमा-पूंजी के बूते अपनी जिंदगी को सहज बनाए रख सका था। लेकिन इस सहारे के बूते बहुत लंबे समय तक संकट का सामना नहीं किया जा सकता है। यही वजह है कि इस बार महंगाई की मार से गरीब तबका और मध्यवर्ग, दोनों ही काफी परेशान हैं। सच यह है कि मंदी के दुश्चक्र से उबरने में महंगाई एक बड़ी बाधा है। साथ ही रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया अपनी मौद्रिक नीति तय करते समय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक को ही ध्यान में रखता है। साफ है कि महंगाई दर में जैसी तेजी बनी हुई है, उसके दबाव की वजह से ब्याज दरों में कमी की संभावना नहीं बनेगी। भले ही विकास दर और निवेश को बढ़ावा देने के लिहाज से ऐसा करना जरूरी हो। पिछले साल कुछ समय तक सख्त पूर्णबंदी के बाद उसमें क्रमशः राहत के साथ जब बाजार खुलने लगे तो अर्थव्यवस्था कुछ हद तक पटरी पर आती दिखने लगी थी। खासतौर पर पिछले साल दिसंबर के बाद दो महीने तक थोड़ी राहत का माहौल बना था। मगर अब दोबारा महामारी का जोर बढ़ता दिख रहा है और लगभग समूचे देश में पूर्णबंदी का खतरा फिर से मंडराने लगा है। कई राज्यों में चरणबद्ध तरीके से कहीं इलाकावार तो कभी रात्रिकालीन कर्फ्यू लागू है। अगर मौजूदा स्थिति में एक बार फिर सब कुछ बंद होने की नौबत आती है, तो इसका बाजार और जरूरत की वस्तुओं की कीमतों पर क्या असर पड़ेगा, यह समझना मुश्किल नहीं है।*

# समान शिक्षा का सपना

विश्लेषण

नवनीत शर्मा

बाबा साहेब आंबेडकर की स्मृति और इतिहास हमें भविष्य की ओर प्रशस्त करते हैं। साथ ही, यह दुनिया कैसी हो, इसका स्वरूप कैसा हो, मनुष्य में कितनी और कैसी मनुजता हो, इसे भी रूपांकित करते हैं। बराबरी का समाज बने, जहां धर्म, जाति, नस्ल, लैंगिकता, भाषा, राष्ट्रीयता, वर्ण जैसे भेदभाव न हों, यह कल्पनीय जरूर लगता है, पर असंभाव्य नहीं।

बाबा साहेब का समाज-दर्शन ऐसे आदर्शवादी समाज का न केवल बिंब रचता है, वरन उसकी बुनियाद और संरचना भी उकेरता है। समता और समानता के भेद को चिह्नित करते हुए बाबा साहेब ने माना कि केवल सबको एक समान मान लेने भर से बात नहीं बनेगी, संसाधनों का बंटवारा समतामूलक होना चाहिए। समतामूलक संसाधनों के बंटवारे के क्रम में सम्मानजनक जीवन-यापन के लिए पहली आवश्यकता शिक्षा तक पहुंच है। गुणात्मक शिक्षा के विमर्श पर पहुंचने से पहले शिक्षा के संख्यात्मक विकास और प्रसार को सार्वभौमिक बनाना होगा। सबको शिक्षा और समान शिक्षा के लिए अनगिनत आयोगों, रिपोर्ट और दस्तावेजों की वकालत के बावजूद स्कूलीकरण के आंकड़े प्रोत्साहनजनक नहीं हैं।

वर्गभेद से परे वर्णभेद और जातिगत भेदभाव आज भी दलितों को स्कूल की दहलीज से बहिष्कृत करते हैं। दलित शिक्षा का इतिहास तीन चरणों में समझा जा सकता है। पहला चरण, स्वतंत्रता पूर्व दलित शिक्षा के आंदोलन का प्रयास उन्हें स्कूल तक लाने के लिए था। दूसरे चरण में उन्हें कक्षा के भीतर तक लाने की कोशिशें हुईं। हालांकि आज भी दलित छात्रों से भेदभाव या मध्याह्न भोजन के दौरान भेदभाव जैसी खबरें मिलती ही रहती हैं।

तीसरा चरण दलितों को कक्षाई विमर्श में भागीदार बनाने या दलित ज्ञानमीमांसा रचने के सवाल पर पहुंचाता है। 'प्रथम' के 'असर' रिपोर्ट के आंकड़ों के अनुसार आज भी इक्यावन फीसद दलित विद्यार्थी स्कूल को बीच में ही छोड़ देते हैं। यह एक और भिन्न विमर्श को जन्म देता है कि विद्यार्थी स्कूल 'छोड़' देते हैं, अथवा स्कूलीकरण की प्रक्रिया में कुछ ऐसा है कि शत-फीसद नामांकन के बाद पाठ्यक्रम, शिक्षायी माध्यम, अध्यापकों और सहपाठियों का व्यवहार और शिक्षा व्यवस्था की ढांचागत कमियों की वजह से विद्यार्थी स्कूल छोड़ देने को मजबूर हो जाते हैं।

आंकड़ों के अनुसार सरकारी स्कूलों में

उनतालीस फीसद दलित अध्यापकों के रिक्त पद हैं। उच्च शिक्षण संस्थानों में दलित भागीदारी की एक भिन्न दारुण कथा है जिसकी बानगी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के इस खुलासे में मिलती है कि सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों में कुल मिला कर 38.42 फीसद आरक्षित पद खाली हैं। उच्च शिक्षण संस्थानों में मात्र पंद्रह फीसद दलित विद्यार्थी नामांकित हैं। इन संस्थानों में आइआइटी और आइआइएम जैसे विशिष्ट संस्थानों में दलित पहुंच के आंकड़ों की नगण्यता भयावह है।

आर्थिक वर्गभेद की सैद्धांतिक अवधारणा में कम से कम शिक्षा से 'पढ़ोगे, लिखोगे बनोगे नवाब' जैसी संभावना तो बनती है, परंतु वर्ण या जाति भेद में किसी भी प्रकार की गतिशीलता संभव नहीं है। हम धर्म बदल सकते हैं, परंतु जाति नहीं और भारतीय उपमहाद्वीप में 'जाति' अस्तित्व की प्राथमिक परिचायक है। व्यक्ति जाति में जन्म ही नहीं लेता, बल्कि मरता भी उसी में है।

जाति से मुक्ति का शास्त्रगत एक ही मार्ग है कि जिस जाति में जन्म हुआ हो उसी के अनुसार शिक्षा, व्यवस्था, विवाह और अंतिम संस्कार हो। शायद इसीलिए बाबा साहेब आंबेडकर ने लिखा कि 'जाति श्रम का नहीं, श्रमिकों का विभाजन है'। वर्ष 2012 में हुए एक अध्ययन के अनुसार सभी कंपनियों के बोर्ड में तिरानवे फीसद सवर्ण सदस्य हैं। संख्याबल के आधार पर दलितों की 'बाजारी क्षमता' अधिक होने के बावजूद शायद ही किसी भारतीय कॉरपोरेट घराने ने जातिगत भेदभाव मिटाने के लिए कोई मुहिम छेड़ी हो, याद नहीं पड़ता।

आर्थिक स्तर पर दलित हिस्सेदारी की बात की जाए तो कुल कृषि योग्य भूमि में से मात्र साढ़े आठ फीसद भूमि पर दलितों का मालिकाना हक है और यह कथित जमींदारी उन्मूलन और भूदान आंदोलन के नतीजे हैं। इस मालिकाना हक में भी इकसठ फीसद दो हेक्टेयर से भी कम भूमि पर है और बाकी तो एक हेक्टयर भूमि भी नहीं रखते। इसी अवस्था के कारण दिहाड़ी मजदूरों में तिरसठ फीसद दलित आबादी है और बेरोजगारी के आंकड़ों में 'सामान्य' से डेढ़ फीसद से अधिक का फासला है, परंतु डिप्लोमाधारी बेरोजगारों के आंकड़े में यह सामान्य वर्ग से दोगुना है।

डिप्लोमाधारी सामान्य वर्ग के अभ्यर्थी यदि सात फीसद बेरोजगारी का दंश झेल रहें हैं तो 14.7 फीसद डिप्लोमाधारी दलित बेरोजगार हैं। एक और अध्ययन के अनुसार भारत सरकार के सचिव के पद स्तर पर फिलहाल एक भी दलित नहीं है और सबसे ऊपरी पायदान के पांच सौ अधिकारियों में से मात्र तीन ही दलित हैं। ये आंकड़े उस आर्थिक असमानता और विषमता को दशार्ते हैं जिसके अनुसार एक सौ दस दलित सीवर और सेप्टिक टैंक को साफ करने के दौरान 2019 में मारे गए और सरकारी गिनती के अनुसार अभी भी बयालीस हजार लोग सर पर मैला ढोने के काम में लगे हैं।

अवसरों की समानता की इन गहरी विषमताओं में शिक्षा, भूमि, रोजगार से परे दिहाड़ी मजदूरी, बेगारी, अस्पृश्य कामगारी के बीच न्याय और अन्याय की संकल्पनाओं में कोई भी विभाज्य रेखा नहीं बचती। न्याय व्यवस्था को यदि समतामूलक समाज बनाने के लिए अवश्यंभावी मान कर देखा जाए तो भारतीय अदालतों में लंबित चार करोड़ मामलों में सुप्रीम कोर्ट के प्रत्येक न्यायाधीश को दो हजार, हाईकोर्ट के प्रत्येक न्यायाधीश को साढ़े-चार हजार और सत्र न्यायालयों में प्रति न्यायाधीश को डेढ़ हजार मुकदमे सुनने की जिम्मेदारी है और प्रत्येक वर्ष लगभग चार करोड़ ही नए मुकदमे दाखिल होते हैं।

ऐसी अवस्था में न्याय व्यवस्था में दलित भागीदारी और दलितों के प्रति जातिगत हिंसा और अपराध की सुनवाई के आंकड़े अलग ही दास्तान कहते हैं। वर्ष 2019 में जातिगत हिंसा और अपराध के छियालीस हजार मामले दर्ज हुए, औसतन एक सौ छब्बीस मामले प्रतिदिन और प्रतिघंटे पांच दलित उत्पीड़न के मामले दर्ज हुए हैं, जिनमें प्रत्येक सोलह में से केवल एक का ही निपटारा प्रतिवर्ष हो पाता है, जैसा कि आंकड़े बताते हैं।

महिलाओं और दलित बच्चों के साथ प्रतिदिन दस दुष्कर्म के मामले दर्ज होते हैं। इन आंकड़ों के संदर्भ में पुलिस व्यवस्था में दलित हिस्सेदारी को देखा जाए तो दलित उत्पीड़न के सर्वाधिक मामले दर्ज होने वाले राज्य उत्तर प्रदेश में अड़सठ फीसद दलित पद पुलिस विभाग में रिक्त हैं, जबकि हरियाणा में उनसठ फीसद, बिहार में अड़तालीस फीसद और राजस्थान में बयालीस फीसद पुलिस विभाग में दलित पद नियुक्तियों की बाट जोह रहे हैं। न्याय के समतामूलक होने में और उस तक पहुंच के लिए पुलिस बल और न्याय तंत्र में दलित भागीदारी का बढ़ना अनिवार्य है, वरना प्रतिदिन छह दलित महिलाओं से बलात्कार और दर्ज मामलों में मात्र दो फीसद के निपटारे, समाज को किसी आतंरिक अराजकता के कगार पर ला सकते हैं।

बाबा साहेब आजीवन मजदूरों, स्त्रियों, दलितों और सभी शोषितों और वंचितों के लिए प्रयास करते रहे। संविधान के निरूपण से लेकर उसमें परिवर्तन के भी पक्षधर रहे। उनका मानना था कि जो समाज 'रुक' जाता है वह सड़ने लगता है। आंबेडकरवाद निरंतर प्रगति और मनुजता के उत्थान का वाद है। वे तमाम संघर्ष जो बाबा साहेब ने किए, इसी बात को लेकर केंद्रित थे कि आने वाली पीढियां अत्याचार से मुक्त हों। बाबा साहेब ने चेताया था कि बुद्धवाद की तरह किसी भी एक व्यक्ति में देवत्व का निहित होना निरंकुशवाद को भी जन्म दे सकता है। शिक्षा, समता और न्याय की कोई भी प्रगतिशील अवधारणा का विमर्श अभी तक आंबेडकरवाद से परे नहीं जा सका है।

# पश्चिम बंगालः बीजेपी की कवायद बनाम ममता की किलेबंदी

राजनीति

मनोरंजन भारती

**बीजेपी गोरखाओं और राजवंशियों को साधने की कोशिश में लगी हुई है। खासकर गोरखाओं को लेकर पार्टी ने पश्चिम बंगाल में तमाम तरह के वादे किए हैं, स्ज्ज का दर्जा देने से लेकर पॉलिटिकल सलूशन तक तमाम वादे किए हैं। बीजेपी ने गोरखा समाज से चाय बागान में काम करने वाले श्रामिकों को 350 रुपये रोज, एम्स खोलने जैसे वादे किए हैं। इसके अलावा राजवंशियों को साधने के लिए बीजेपी ने राज्य में पंचानन बर्मा की मूर्ति लगाने की बात कही है, बता दें कि पंचानन बर्मा राजवंशी समुदाय के एक बड़े नेता है, लोग इनकी पूजा करते हैं। इसके अलावा भारतीय जनता पार्टी ने एक म्युजियम का वादा और कूच बिहार में टूरिज्म को बढ़ावा देने का भी वादा किया है।**

पश्चिम बंगाल के विधानसभा चुनाव में बीजेपी की रणनीति बिल्कुल साफ है। बीजेपी ने नॉर्थ बंगाल में अपने भविष्य को आजमाने की कोशिश की है। उत्तर बंगाल में 8 लोकसभा सीटें हैं। 2019 में नॉर्थ बंगाल की आठ में से सात लोकसभा सीटें जीती थीं। भारतीय जनता पार्टी ने एक रणनीति के तहत यहां पर अलग-अलग जातियों या समुदाय को केंद्र में रखा है। सबसे पहले राजवंशी समुदाय, जिसको भूमिपुत्र भी कहा जाता है। कूचबिहार, अलीपुरद्वार, दार्जिलिंग नार्थ, साउथ दिनाजपुर जैसी क़रीब तीस सीटों पर इनका दबदबा है। राजवंशी चाहते हैं कि और बांग्लादेशियों की पहचान करके उन्हें बाहर निकाला जाए। यही वजह है कि ने यहां पर अपनी पैठ बना ली है।

उधर ममता बनर्जी भी पीछे नहीं हैं, उनका कहना है कि वो भी राजवंशियों के साथ है। उनका आरोप है केंद्र की सत्ता में दो बार के चुनाव जीतने के बाद भी इसे सही तरीके से लागू नहीं कर पाई है, जिसके कारण राजवंशी समाज में थोड़ी बहुत नाराजगी भी देखने को मिली है। बीजेपी को लगता है कि एक दूसरा समाज भी है जो उनके साथ है। यह समाज है गोरखा समुदाय। गोरखा समाज का पश्चिम बंगाल की करीब 20 सीटों पर अच्छा खासा असर है। गोरखा समाज के लोग चाहते हैं कि उनकी समस्या का कोई परमानेंट राजनीतिक हल हो, वह चाहते हैं कि उन्हें यानी की अनुसूचित जनजाति का स्टेटस मिले। यहां ममता बनर्जी ने केंद्र को कई बार घेरने की कोशिश की है। सीएम ममता ने गोरखा समाज से यह भी कहा है कि हमने अपनी मांग को आगे बढ़ा दिया है लेकिन केंद्र के पास यह अटका है। जबकि बीजेपी के जितने भी लीडर इन इलाकों में जाते हैं वह गोरखा समाज से उनकी मांगों को पूरा करने का वादा जरूर करते हैं।

2019 के सेटबैक को खत्म करने के लिए ममता बनर्जी कूच बिहार और नॉर्थ बंगाल के इन इलाकों में कई योजनाओं की घोषणा की है। उनके पास इस इलाके में कुछ बड़े लीडर भी हैं जैसे कि श्रीवर्धन बर्मन, अतुल रॉय, बिमल गुरुंग। ये सभी राजवंशी गोरखा समुदाय से आते हैं। यहां 54 सीटें हैं, पिछले विधानसभा चुनावों में टीएमसी ने यहां 24 सीटें जीती थी जबकि 2011 में वह 17 सीटों पर जीत हासिल करने में कामयाब रही थीं।

बीजेपी गोरखाओं और राजवंशियों को साधने की कोशिश में लगी हुई है। खासकर गोरखाओं को लेकर पार्टी ने पश्चिम बंगाल में तमाम तरह के वादे किए हैं, स्ज्ञ का दर्जा देने से लेकर पॉलिटिकल सलूशन तक तमाम वादे किए हैं। बीजेपी ने गोरखा समाज से चाय बागान में काम करने वाले श्रामिकों को 350 रुपये रोज, एम्स खोलने जैसे वादे किए हैं। इसके अलावा राजवंशियों को साधने के लिए बीजेपी ने राज्य में पंचानन बर्मा की मूर्ति लगाने की बात कही है, बता दें कि पंचानन बर्मा राजवंशी समुदाय के एक बड़े नेता है, लोग इनकी पूजा करते हैं। इसके अलावा भारतीय जनता पार्टी ने एक म्युजियम का वादा और कूच बिहार में टूरिज्म को बढ़ावा देने का भी वादा किया है।

वहीं ममता बनर्जी चा सुंदरी नाम से एक योजना लाने की बात कर रही हैं, जिसमें चाय बगान में काम करने वाले लोगों को मुफ़्त में घर मिलेगा, चाय बगान में काम करने वाले श्रामिकों को 202 रुपये हर रोज रोज़गार का वादा भी किया गया है, इसके अलावा टीएमसी प्रमुख ने पंचानन बर्मा की मूर्ति लगाने और उनके जन्मदिन पर राज्य में छुट्टी घोषित करने की बात भी कही है। ममता बनर्जी ने टूरिज़्म के लिए सिलीगुड़ी और दार्जिलिंग में दो नए सेंटर्स खोले हैं। कहा जा रहा है कि वहां पर पर्यटक आने शुरू भी हो गए है।

ममता बनर्जी के लिए यह अच्छी बात है कि नॉर्थ बंगाल के जिस इलाके में बनर्जी को सियासी पटखनी देने की तैयारी कर रही है वहां ममता ने अपनी योजनाओं के तहत काफी कुछ काम किया है। ऐसे में अब देखना होगा कि नॉर्थ बंगाल में किसके हिस्से में जीत की खुशी आती है. पिछले लोकसभा चुनावों में बीजेपी ने यहां 8 में से 7 लोकसभा सीटों पर जिताया था, ऐसे में बीजेपी सत्ता में आना चाहती है तो उन्हें हर हाल में यहां अच्छा प्रदर्शन करना होगा।

भारतीय जनता पार्टी अपनी नई रणनीति के तहत अलग-अलग जातियों जैसे राजवंशी और गोरखा का झुकाव अपनी तरफ करने की कोशिश कर रहा है. अब बात कर लेते हैं मतुआ समुदाय की। जिसके करीब 3 करोड़ वोटर हैं और लगभग 70 सीटों पर इसका असर देखा जाता है. पिछले दिनों प्रधानमंत्री ने बांग्लादेश यात्रा के दौरान मतुआ समुदाय के संस्थापक हरिशचंद्र ठाकुर के ठाकुरबाड़ी यानी ओरकांडी मंदिर भी गए थे। जिसके बाद ऐसा माना जा रहा है कि यह समुदाय बीजेपी का साथ देगा। कुल मिलाकर यह तीन जातियां अगर बीजेपी का साथ देती हैं तो पश्चिम बंगाल चुनाव में बीजेपी की राह आसान हो सकती है।

हालांकि ममता बनर्जी ने भी मतुआ समुदाय के लिए कुछ नहीं किया यह कहना भी गलत होगा। ममता बनर्जी के कार्यकाल में यहां मतुआ डेवलेपमेंट बोर्ड बनाया गया। एक यूनिवर्सिटी भी बनाई गई। बावजूद इसके बीजेपी का मानना है कि इनका वोट बीजेपी को ही जाएगा। इन्हीं जातियों के आधार पर बीजेपी के नेता बहुमत का आंकड़ा हासिल करने का दावा कर रहे हैं।

यहां सब कुछ निर्भर करेगा इस बात पर कि इन जातियों के लोग क्या सोचते हैं। क्योंकि लोकसभा और विधानसभा का चुनाव अलग होता है, इस बात पर भी चीजें निर्भर करेंगी कि जनता, पश्चिम बंगाल में एक नई सरकार लाना चाहती है या नहीं।

आजकल

# लड़ाई को मजबूती

ऐसे वक्त में जब देश में रोज कोरोना संक्रमितों का आंकड़ा डेढ़ लाख से अधिक पहुंच रहा है, टीकाकरण ही इससे मुकाबले का अंतिम हथियार नजर आता है। जब तक हम अपनी बड़ी आबादी के लिये टीकाकरण का लक्ष्य पूरा नहीं कर लेते, हम निश्चित नहीं हो सकते कि हमने लड़ाई जीत ली है। ऐसे में देश में कोवैक्सीन व कोविशील्ड के बूते लड़ी जा रही लड़ाई को और मजबूती मिलने की उम्मीद तब बढ़ गई जब केंद्रीय औषधि मानक नियंत्रक संगठन ने रूसी वैक्सीन स्पूतनिक को आपातकालीन उपयोग के लिये मंजूरी दे दी। दुनिया की बहुचर्चित चिकित्सा विज्ञान पत्रिका 'द लैंसेंट' के अनुसार अंतिम चरण के ट्रायल के नतीजों में स्पूतनिक को कोरोना के विरुद्ध 92 प्रतिशत मामलों में सुरक्षा प्रदान करने वाला पाया गया है। देश में कोरोना वायरस की घातक होती लहर के बीच केंद्र सरकार ने इस तीसरी वैक्सीन को इमरजेन्सी उपयोग की अनुमति दी है। हाल के दिनों में कई राज्यों ने वैक्सीन की कमी की शिकायत की थी। इसके चलते कई केंद्रों में टीकाकरण का कार्य बाधित हुआ था। निश्चय ही यह हमारे टीकाकरण अभियान के लिये चिंता की बात है। इतना तो तय है कि सवा अरब वाले देश की जरूरतों के मुताबिक न तो टीके का उत्पादन हो पाया है और न ही उस गति से टीकाकरण हो सका है। विपक्षी दल कोरोना टीके के निर्यात और सद्भाव के लिये टीके दिये जाने की नीति को लेकर सवाल उठाते रहे हैं। हालांकि, केंद्र सरकार ने मार्च से कोविशील्ड के निर्यात पर अस्थायी तौर पर रोक लगा रखी है। अब तक देश में दस करोड़ से अधिक लोगों को फिलहाल वैक्सीन दी जा चुकी है। दरअसल, यह जरूरी भी था क्योंकि अब भारत 1.35 करोड़ से अधिक लोगों के संक्रमित होने से दुनिया में संक्रमण की दृष्टि से दूसरे नंबर पर पहुंच गया है। दरअसल, कोरोना संक्रमण से लड़ाई के क्रम में भारत सरकार ने प्राथमिकताओं के आधार पर जुलाई माह तक 25 करोड़ लोगों को टीका लगाने का लक्ष्य रखा है। ऐसे में इस लक्ष्य को हासिल करने के लिये टीकाकरण अभियान को तेज करने की जरूरत है। जरूरत टीका उत्पादन में तेजी लाने और अन्य वैक्सीनों को उपयोग में लाने की भी है। ऐसे में रूस के गैमालेया इंस्टीट्यूट द्वारा विकसित वैक्सीन इस अभियान में मददगार हो सकती है।

# टीका व सावधानी से ही कोविड का खात्मा

दृष्टिकोण

दिनेश सी. शर्मा

कुछ वक्त ठंडा पड़ने के बाद कोरोना वायरस ने फिर से धावा बोल दिया है। कई राज्यों में संक्रमण का आंकड़ा तेजी से बढ़ रहा है और देशभर में एक दिन में आए नये मामलों की संख्या ने सितंबर, 2020 में दर्ज की गई सर्वाधिक गिनती को पार कर लिया है। विशेषज्ञों ने वर्ष 2020 में कोविड महामारी की शुरुआत में ही भविष्यवाणी कर दी थी कि इसकी दूसरी-तीसरी या अधिक लहर आ सकती है, क्योंकि महामारी में अक्सर यही होता है। साल 1918 में बरपी इंफ्लुएंज़ा महामारी के दौरान दो सालों में तीन मर्तबा लहरें आई थीं। जब भी महामारी के संक्रमण ग्राफ में नये मामलों की बढ़ती संख्या का एकदम स्पष्ट उठान बनने लगे तो यह नयी लहर को दर्शाता है। विश्व के अलग-अलग भागों में विभिन्न समय पर यह लहरें देखने को मिल सकती हैं, लेकिन इनकी अवधि और तीव्रता के बारे में कयास लगाना मुश्किल है। हर नयी लहर की तेजी अथवा नरमी पहले वाली से एकदम जुदा हो सकती है। मसलन, अफ्रीका में आई कोविड-19 की पहली लहर की तीव्रता बाकी विश्व से मद्धिम थी, जबकि दूसरी वाली कहीं ज्यादा संक्रमण दर वाली और घातक है। कनाडा में इस वक्त तीसरी लहर चल रही है जो पिछली दो से अधिक मारक है।

भारत में कोरोना की दूसरी लहर ऐसे वक्त में बनी है जब लोगों ने पहली वाली से सफलतापूर्वक निपटने का जश्न मनाना शुरू करा ही था क्योंकि वर्ष 2021 के आरंभिक दो महीनों में आंकड़ा नाटकीय रूप से काफी कम रहा था। सरकार में बैठे कुछ लोग तो यहां तक दावा करने लगे थे कि विश्व को 'कोविड-19 प्रबंधन के भारतीय मॉडल' से बहुत कुछ सीखना चाहिए। 7 मार्च, 2021 को स्वास्थ्य मंत्री हर्षवर्धन ने घोषणा कर डाली 'हम कोविड-19 महामारी का खेल खत्म करने की कगार पर हैं।' स्वास्थ्य सेवा कर्मियों और अग्रिम पंक्ति के कोरोना योद्धाओं एवं

बुजुर्गों के कोविड रोधी टीका लगाने की मुहिम भी इस बीच शुरू हो गई और इसे विश्व का सबसे बड़ा टीकाकरण कार्यक्रम बताकर वाहवाही लूटी गई। परंतु यह काम खुद अपनी पीठ थपथपाने जैसा था और वक्त से पहले जीत की खुशी मनाने वाली जल्दबाजी भी। यह तमाम कारक और सावधानी संबंधी आचार संहिता में उदासीनता स्वरूप लोगों में लापरवाही बनने लगी। लोगबाग कोविड-संबंधी सावधानियों को दरकिनार कर पहाड़ों, समुद्र तट और अन्य पर्यटक स्थलों की सैर को उमड़ने लगे।

इस दौरान पांच राज्यों में विधानसभा चुनाव का वक्त भी आन पहुंचा और कुम्भ जैसा विशालतम धार्मिक उत्सव भी। समय पर चुनाव करवाना बेशक एक संवैधानिक आवश्यकता हो सकती है। महामारी के दौरान कई देशों में चुनाव हुए हैं और भारत में भी पहली लहर के दौरान कुछ विधानसभाई चुनाव सपन्न हुए थे। लेकिन मौजूदा चुनाव प्रक्रिया में मतदान तिथियों का लंबा चलना और विशाल रैलियों एवं रोड-शो का आयोजन होने से यह चुनाव पिछले वाले से भिन्न है। महामारी को लेकर चुनाव आयोग से आए दिशा-निर्देशों की जमकर धज्जियां उड़ी हैं। असम के स्वास्थ्य मंत्री ने तो मुंह पर मास्क लगाने से यह कहकर मना कर दिया कि ऐसा करके वे जनता के बीच भय का माहौल नहीं फैलाना चाहते! इसके अलावा विशाल चुनावी रैलियों में उपस्थित भीड़ को देखकर बाकी लोगों ने मान लिया कि जब इन्हें कुछ नहीं हो रहा तो हम क्यों कोविड संबंधी सावधानियां बरतें। चुनावी भीड़ का जिक्र कर आम नागरिक महामारी प्रबंधन के तहत सामाजिक आयोजन, जैसे कि शादी-ब्याह, में लोगों की संख्या सीमित रखने वाले आदेशों पर सवाल उठाने लगे। कुछ विश्वविद्यालयों में छात्र सामान्य कक्षाएं फिर से लगाने की मांग कर रहे थे। जबकि चुनाव आयोग के लिए महामारी एक ऐसा मौका था कि प्रचार हेतु नये खोजे गए तरीके और तकनीक के अधिकाधिक इस्तेमाल करने को बढ़ावा देता। कुम्भ के मामले में उत्तराखंड उच्च न्यायालय ने दखल देते हुए आगंतुक तमाम श्रद्धालुओं के लिए आरटी-पीसीआर नेगेटिव रिपोर्ट पेश करने की अनिवार्यता लागू कर दी है।